तेज पाल सिंह (मृत) जरिये विधिक प्रतिनिधि

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

5 अगस्त, 1986

[ई.एस.वेंकटरमैया और रंगनाथ मिश्रा, जे. जे.]

भारत का संविधान, अनुच्छेद 235: अधीनस्थ न्यायपालिका-उच्च न्यायालय का नियंत्रण-प्रकृति और दायरा- न्यायधीशों की समयपूर्व सेवानिवृत्ति केवल उच्च न्यायालय जो प्रदर्शन के मूल्यांकन के बाद निष्कर्ष पर आने के लिए सक्षम है-राज्यपाल उसके बाद आदेश पारित करेगा।

न्यायालय के नियम (इलाहाबाद उच्च न्यायालय), 1952: नियम 3,4,5 और 12-प्रशासनिक समिति न्यायालय के लिए और उसकी ओर से कार्य कर सकती है ना कि प्रशासनिक न्यायाधीश- न्यायिक अधिकारी - समयपूर्व सेवानिवृत्ति-केवल प्रशासनिक समिति ही सरकार को सिफारिश कर सकती है।

अपीलार्थी उत्तर प्रदेश राज्य में अतिरिक्त जिला और सत्र न्यायाधीश के रूप में काम कर रहा था। राज्य सरकार ने वर्ष 1967 में उनकी समयपूर्व सेवानिवृत्ति के लिए उच्च न्यायालय का रुख किया। 8 जुलाई, 1968 को प्रशासनिक न्यायाधीश ने अपीलार्थी को तीन महीने का नोटिस देने के बाद उसे सेवानिवृत्त करने के प्रस्ताव पर सहमति व्यक्त की। राज्यपाल ने 24 अगस्त, 1968 को सेवानिवृत्ति का आदेश पारित किया। इसके तीन दिन बाद, 27 अगस्त, 1968 को उच्च न्यायालय की प्रशासनिक समिति ने राज्य सरकार को प्रशासनिक न्यायाधीश की राय को अपनी मंजूरी दे दी। इसके बाद, 30 अगस्त, 1968 को अतिरिक्त रजिस्ट्रार ने अपीलार्थी को सेवानिवृत्ति का आदेश प्रेषित

किया। यह आदेश मौलिक नियम 56 के क्लोज (ए) के प्रथम परन्तुक के पैरा (i) के तहत किया जाना था।

उक्त आदेश से व्यथित होकर अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका दायर की जिसमें आरोप लगाया कि (i) भारतीय संविधान के अनुच्छेद 235 द्वारा अपेक्षित उच्च न्यायालय की सिफारिश के बिना सेवानिवृत्ति का आदेश दिया गया था। (ii) मौलिक नियम 56, जिसके तहत आदेश जारी किया गया था, वह अनुच्छेद 14 और 16 का उल्लंघन था, और (iii) कि समयपूर्व सेवानिवृत्ति अनुच्छेद 311 (2) का उल्लंघन था।

जैसा कि मौलिक नियम 56 के अधिकारों से संबंधित प्रश्न था दो अन्य रिट याचिकाओं में उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित, तीन मामलों को एक पूर्ण पीठ को भेजा गया, जिसने यह अभिनिर्धारित किया कि मौलिक नियम 56 के क्लोज (ए) के परन्तुक के पैरा (i) अनुच्छेद 14 एवं 16 का उल्लंघन था।

इसके तुरंत बाद राज्यपाल ने मौलिक नियम 56 में संशोधन करने और उसके तहत पहले से की गई कार्यवाहीयों को मान्य करने के लिए एक अध्यादेश जारी किया । इसके बाद अपीलार्थी ने अध्यादेश और 1970 के यू. पी. अधिनियम संख्या 5 की वैधता पर सवाल उठाते हुए अपनी रिट याचिका में संशोधन की मांग की, जिसने अध्यादेश का स्थान लिया।

रिट याचिका को खारिज करते हुए उच्च न्यायालय ने यह विचार रखा कि जब भी राज्यपाल किसी जिला न्यायाधीश या अधीनस्थ न्यायिक अधिकारी के संबंध में समयपूर्व सेवानिवृत्ति का आदेश देने का प्रस्ताव करता है, तो उससे केवल इस प्रश्न पर उच्च न्यायालय से परामर्श करने की अपेक्षा की जाती है और यह कि राज्यपाल द्वारा अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश पारित करने के बाद भी उच्च न्यायालय के साथ यह

परामर्श अनुमत था। न्यायिक अधिकारी जिसकी की समय पूर्व सेवानिवृत्ति की सिफारिश उच्च न्यायालय द्वारा की जाती है, उसे सिविल सेवाओं को प्रभावित करने वाले अनुशासनात्मक मामलों के सम्बंध में अनुच्छेद 320 (3) (सी) के तहत किए गए परामर्श से तुलना करते हुए यह माना की उच्च न्यायालय के साथ ऐसा परामर्श बाध्यकारी नही है और इसमे विफलता न्यायालय में कार्यवाही करने का कोई कारण उत्पन्न नही करता है।

इस प्रश्न पर कि क्या अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश अपीलार्थी के विरुद्ध पारित किया जाना संविधान की आवश्यकताओं को पूरा करता है।

न्यायालय ने अपील को अनुमति देते हुए अभिनिर्धारित कियाः-

1. समयपूर्व सेवानिवृत्ति का प्रशासनिक न्यायाधीश की राय पर पारित किया गया विवादित आदेश राज्यपाल द्वारा उनके समक्ष प्रशासनिक समिति या पूर्ण न्यायालय की सिफारिश किए बिना अमान्य और अप्रभावी है। उच्च न्यायालय ने मामले का निर्णय लेते समय संविधान के अनुच्छेद 235 की प्रयोज्यता और दायरे का आंकलन नही किया।

2.1 उच्च न्यायालय की सिफारिश के बिना राज्यपाल जिला न्यायालयों और अधीनस्थ न्यायालयों के न्यायाधीशों को समय से पहले सेवानिवृत्त करने का आदेश जारी करने के लिए स्वतंत्र नही हैं।

2.2 हालांकि यह सरकार के लिए मान्य हो सकता है कि वह जिला न्यायाधीश या अधीनस्थ न्यायिक अधिकारी के आचरण को प्रभावित करने वाली सभी सामग्री, जो उसके कब्जे में हो सकती हैं, को उच्च न्यायालय के ध्यान में लाए। सरकार किसी जिला न्यायाधीश या अधीनस्थ न्यायिक अधिकारी को पहले से ही सेवानिवृत्त करने की पहल नहीं कर सकती है। इस तरह की पहल उच्च न्यायालय के पास होनी चाहिए।

2.3 यह उच्च न्यायालय के लिए है, कार्य एवं अन्य सार्थक पहलुआेंं के मूल्यांकन के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कि क्या इसके नियंत्रण में कोई विशेष न्यायिक अधिकारी समय से पहले सेवानिवृत्त किया जावे और एक बार जब उच्च न्यायालय निष्कर्ष पर पहुँच जाए कि ऐसी सेवानिवृत्ति होनी चाहिए, न्यायालय ने राज्यपाल से ऐसी सिफारिश की हो। निष्कर्ष उच्च न्यायालय का होना है क्योंकि उसमें नियंत्रण निहित है।

मौजूदा मामले में, सरकार ने उच्च न्यायालय की सिफारिश मांगी कि क्या अपीलार्थी को समयपूर्व सेवानिवृत किया जा सकता है। इलाहाबाद उच्च न्यायालय के नियमों के अर्न्तगत प्रशासनिक समिति न्यायालय के लिए और उसकी और से कार्य कर सकती थी ना की प्रशासनिक न्यायाधीश को, सरकार द्वारा व्यक्त विचार के समर्थन में अपनी सिफारिश देने से पहले पत्र को प्रशासनिक समिति के सदस्यों मे प्रसारित करना चाहिए था अथवा उसकी मिटिंग मे रखना चाहिए था। उन्होनों दोनो में से किसी को नही अपनाया और अपनी सिफारिश सरकार को प्रेषित कर दी की, अपीलार्थी को समय पूर्व सेवानिवृत्ति दी जा सकती है। ऐसी सिफारिश पर राज्यपाल द्वारा आदेश पारित करने के बाद ही इस मामले को प्रशासनिक समिति के समक्ष रखा गया था। इसलिए, प्रशासनिक न्यायाधीश का सरकारी प्रस्ताव से सहमत होना पारिणामिक नही था क्यूंकी यह संविधान के अनुच्छेद 235 की आवश्यकता को पूरा नहीं करता था।

3. इस मामले में विचलन केवल एक अनियमित्ता नहीं है जिसे समयपूर्व सेवानिवृत्ति के राज्यपाल के आदेश के बाद की कार्रवाई के लिए प्रशासनिक समिति द्वारा दी गई पूर्व कार्योत्तर मंजूरी से ठीक किया जा सकता हो। इस मामले में की गई त्रुटि अवैधता के बराबर एक लाइलाज दोष के बराबर है।

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम बटुक देव पाटिल त्रिपाठी और अन्य [1978] (3) एस. सी. और. 131 हरियाणा राज्य बनाम इंदर प्रकाश आनंद एच. सी. एस. एवं अन्य, [1976] (सपी.) एस.सी.और. 603; आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय और अन्य बनाम वी.वी.एस. कृष्णमूर्ति एवं अन्य, [1979] (1) एस.सी.और. 26 संदर्भित।

यू.पी. राज्य बनाम मानबोधन लाल श्रीवास्तव, [1958] एस.सी.और. 533, विशिष्ट।

सिविल अपीलीय न्यायनिर्णयः सिविल अपील सं. 1243/1972

1968 की रिट याचिका संख्या 3958 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के निर्णय दिनांक 23.2.1970 और डिक्री से।

अपीलार्थी की ओर से एस.एम.आशरी, रमेश कुमार खन्ना, और.ए.मिश्रा और एन.एन. शर्मा।

रेस्पोडेंट के लिए गोपाल सुब्रमण्यम और श्रीमती शोभा दीक्षित

न्यायालय का निर्णय सुनाया गया।

वैंकटरमैया, जे. अपीलार्थी वर्ष 1968 में अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश के रूप में उत्तरप्रदेश राज्य मे काम कर रहा था। उनकी जन्म तिथि 1 अप्रैल, 1913 थी। वे 58 वर्ष की आयु पूरी करने पर 31 मार्च, 1971 की समाप्ति पर सेवा से सेवानिवृत्त होते । लेकिन 3 सितंबर, 1968 को अपीलार्थी को उत्तर प्रदेश सरकार (गृह विभाग) के सचिव द्वारा 24 अगस्त, 1968 को जारी एक आदेश दिया गया जिसमें कहा गया था कि उत्तर प्रदेश के राज्यपाल ने समय-समय पर संशोधित वित्तीय हस्तपुस्तिका, खंड II, भाग II से IV में निहित मौलिक नियम 56 के खंड (ए) के पहले परंतुक के पैरा (i) के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए यह आदेश दिया था कि अपीलार्थी को नोटिस की सेवा की तारीख से तीन महीने की समाप्ति पर सेवा से सेवानिवृत्त होना चाहिए।

समयपूर्व सेवानिवृत्ति के उक्त नोटिस से व्यथित होकर, अपीलार्थी ने संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष 1968 की रिट याचिका संख्या 3958 दायर की, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ आग्रह किया गया कि (i) 24 अगस्त, 1968 के आदेश के अनुसार अपीलार्थी की सेवानिवृत्ति का आदेश संविधान के अनुच्छेद 235 द्वारा आवश्यक उच्च न्यायालय की सिफारिश के बिना दिया गया था, (ii) कि मौलिक नियम 56 जिसके तहत विवादित आदेश जारी किया गया था, संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का उल्लंघन था, और (iii) कि अपीलार्थी की समयपूर्व सेवानिवृत्ति संविधान के अनुच्छेद 311 (2) का उल्लंघन था। मौलिक नियम 56 की वैधता से संबंधित प्रश्न दो अन्य मामलों में शामिल था जो उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित थे। अपीलार्थी द्वारा दायर रिट याचिका और अन्य दो रिट याचिकाओं की सुनवाई उच्च न्यायालय की एक खंड पीठ द्वारा एक साथ की गई थी।

डिवीजन बेंच ने तीनों मामलों को कानून के दो विशिष्ट प्रश्नों पर विचार करने के लिए एक पूर्ण पीठ को भेजा, यथा (i) क्या मौलिक नियम 56 के तहत सेवानिवृत्ति की आयु 55 या 58 वर्ष थी और (ii) क्या मौलिक नियम 56 के खंड (ए) के परंतुक ने संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का उल्लंघन किया है। इसके बाद पूर्ण पीठ ने तीनों मामलों की सुनवाई की और दोनों प्रश्नों का उत्तर इस प्रकार दियाः (i) मौलिक नियम 56 के खंड (क) के तहत सेवानिवृत्ति की आयु 58 वर्ष थी और (ii) मौलिक नियम 56 के खंड (क) के परंतुक के अनुच्छेद (i) ने संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का उल्लंघन किया। पूर्ण पीठ का फैसला 26 सितंबर, 1969 को सुनाया गया था। इसके तुरंत बाद उत्तर प्रदेश के राज्यपाल ने 5 नवंबर, 1969 को एक अध्यादेश जारी किया जिसमें मौलिक नियम 56 में संशोधन किया गया और पहले से की गई कार्रवाइयों को मान्य किया गया। अध्यादेश को 1 अप्रैल, 1970 को 1970 के यू. पी. अधिनियम संख्या 5 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था। अपीलार्थी ने रिट याचिका में

अध्यादेश और अधिनियम की वैधता पर सवाल उठाते हुए संशोधन की मांग की। इसके बाद रिट याचिका की सुनवाई उच्च न्यायालय की एक खंड पीठ द्वारा की गई और इसे 23 फरवरी, 1970 को खारिज कर दिया गया। प्रमाण-पत्र द्वारा यह अपील उच्च न्यायालय के फैसले के खिलाफ दायर की जाती है।

इस मामले में हम मौलिक नियम 56 की वैधता के बारे में चिंताशील नहीं हैं क्योकि इसका निपटारा संविधान के अनुच्छेद 235 के आधार पर किया जा सकता है।

निर्विवादित प्रांसगिक तथ्य जो इस अपील के अभिलेख से एकत्रित किए जा सकते हैं, वे यह हैं। राज्य सरकार ने अपीलार्थी की समयपूर्व सेवानिवृत्ति के लिए वर्ष 1967 में उच्च न्यायालय का रुख किया। 8 जुलाई, 1968 को प्रशासनिक न्यायाधीश ने राज्य सरकार के तीन महीने का नोटिस देने के बाद अपील को समय से पहले सेवानिवृत्त करने के प्रस्ताव पर सहमति व्यक्त की। राज्यपाल ने 24 अगस्त, 1968 को सेवानिवृत्ति का आदेश पारित किया। इसके तीन दिन बाद, 27 अगस्त, 1968 को उच्च न्यायालय की प्रशासनिक समिति ने राज्य सरकार को पहले भेजी गई प्रशासनिक न्यायाधीश की सिफारिश को अपनी मंजूरी दे दी। इसके बाद 30 अगस्त, 1968 को अतिरिक्त रजिस्ट्रार ने अपीलार्थी को सेवानिवृत्ति का आदेश प्रेषित किया। यह वास्तव में 3 सितंबर, 1968 को तामील हुआ था। इस मामले में विचारण के लिए प्रश्न यह है कि क्या आदेश अपीलार्थी के खिलाफ पारित अनिवार्य सेवानिवृत्ति संविधान की आवश्यकताओं को पूर्ण करता है।

संविधान के अनुच्छेद 235 में प्रावधान है कि जिला अदालतों और उनके अधीनस्थ अदालतों का नियन्त्रण उच्च न्यायालय में निहित है जिसमें नियुक्ति और पदोन्नति और छुटटी की अनुमति शामिल है। *उत्तरप्रदेश राज्य बनाम बटुक देव पाटिल त्रिपाठी एवं अन्य* [1978] 3 एस.सी.और. 131 मे यह प्रतिपादित किया गया कि जिला

न्यायालयों और अधीनस्थ न्यायालयों के न्यायाधीशों की समयपूर्व सेवानिवृत्ति एक ऐसा मामला है जो संविधान के अनुच्छेद 235 द्वारा उच्च न्यायालयों में निहित नियंत्रण की शक्ति के भीतर आता है। उच्च न्यायालय की सिफारिश के बिना राज्यपाल के लिए जिला न्यायालयों और अधीनस्थ न्यायालयों के न्यायाधीशों को समय से पहले सेवानिवृत्त करने का आदेश जारी करने का अधिकार नहीं है।

जहाँ तक इलाहाबाद उच्च न्यायालय का संबंध है, नियम हैं । संविधान के अनुच्छेद 225 के तहत बनाया गया और उच्च न्यायालय द्वारा उच्च न्यायालय के प्रशासनिक कार्य को करने के तरीके के बारे में उस ओर से इसे सक्षम करने वाली अन्य सभी शक्तियां है, इन्हें न्यायालय के नियम, 1952 के रूप में जाना जाता है। प्रासंगिक नियम न्यायालय के नियम, 1952 के अध्याय III में पाए जाते हैं। अध्याय III का भौतिक भाग नीचे दिया गया हैः

" अध्याय III "

न्यायालय का कार्यकारी और प्रशासनिक कार्य

1. इन नियमों के अधीन, एक प्रशासनिक समिति होगी जो न्यायालय के लिए कार्य करेगी जिसमें मुख्य न्यायाधीश, प्रशासनिक न्यायाधीश एवं मुख्य न्यायाधीश द्वारा नियुक्त पांच अन्य न्यायाधीश होगे। मुख्य न्यायाधीश न्यायालय के लिए प्रशासनिक विभाग और कार्यपालिका तथा न्यायालय के प्रशासनिक प्रबंधन का कार्य होगा जबकि प्रशासनिक विभाग के न्यायाधीश के पास प्रशासनिक विभाग तथा कार्यपालिका एवं प्रशासनिक प्रबंधन जो कि अधीनस्थ न्यायालयों से संबंधित होगा, का प्रभार होगा। जहां तक संभव हो प्रशासनिक विभाग के न्यायाधीश अपने कर्त्तव्य एवं कार्य का निर्वहन संबंधित निरीक्षण न्यायाधीश की सलाह पर करेगें जो कि मुख्य न्यायाधीश द्वारा समय-समय पर नियुक्त होगे।

मुख्य न्यायाधीश एवं प्रशासनिक विभाग के न्यायाधीश को छोडकर, समिति की सदस्यता दो वर्षो के लिए होगी।

2- समय समय पर और अवसर आने पर मुख्य न्यायाधीश, न्यायाधीशों में से एक न्यायाधीश को प्रशासनिक विभाग के लिए नामित करेगें जिनका कार्यकाल तीन वर्ष तक होगा जबतक कि पुर्ननामित नहीं किया जावे।

3- सभी कार्यकारी और प्रशासनिक कार्य तथा वे सभी कार्य जिनके लिए प्रशासनिक विभाग के आदेश की आवश्यकता होती है...रजिस्ट्रार द्वारा मुख्य न्यायाधीश अथवा प्रशासनिक विभाग के न्यायाधीश को प्रस्तुत किये जायेगे, जैसा भी मामला हो, अपनी टिप्पणियों के साथ, उस न्यायाधीश द्वारा निपटाए जाने के लिए।

4- प्रशासनिक विभाग का न्यायाधीश अंतिम आदेश पारित करने से पहले न्यायिक अधिकारियो की नियुक्त, पदोन्नति या निलम्बन की सिफारिशें प्रशासनिक समिति के न्यायाधीश जो इलाहाबाद मे उपस्थित हो, उनके मध्य प्रसारित करेगा। किसी न्यायाधीश के ऐसी सिफारिशों पर असहमति होने पर वह ऐसी असहमति और उसके कारण लेखबद्ध करेगें।

5 (1). निम्नलिखित मामलों के संबंध में प्रशासनिक विभाग के न्यायाधीश प्रशासनिक समिति से अपनी राय व सिफारिश के साथ मामले से संबंधित कागजात प्रसारित करेगे जो समिति सदस्य इलाहाबाद मे मौजूद हो अथवा प्रशासनिक समिति की मीटिंग मे रखेगे। यथा--

अ. अधीनस्थ न्यायालयों को सामान्य पत्र जारी किया जाना;

ब. रिर्टन एवं स्टेटमेंट की तैयारी के संबंध मे निर्देश जारी किया जाना;

स. सभी महत्वपूर्ण मामलें जिन पर सरकार न्यायालय की राय चाहती है;

द. उत्तरप्रदेश उच्च न्यायिक सेवा की नियुक्ति; एवं

य. अन्य मामला जो मुख्य न्यायाधीश या प्रशासनिक विभाग के न्यायाधीश विचार के लिए रखना उचित समझते हो

(2) अधीनस्थ न्यायालयों को जारी किए गए सभी सामान्य पत्रों की प्रतियां जारी होने के बाद जल्द से जल्द जानकारी के लिए सभी न्यायाधीशों को वितरित की जाएंगी।

(7) जैसे ही प्रशासनिक समिति किसी भी व्यस्त व्यक्ति का निपटारा कर देती है, समिति के समक्ष क्या मामले रखे गए थे और किस तरीके से उनका निपटारा किया गया था, यह दर्शाने वाला एक बयान सभी न्यायाधीशों को जानकारी के लिए प्रसारित किया जाएगा, सिवाय ऐसे न्यायाधीशों को छोडकर जो अवकाश पर हो। "

उपरोक्त निर्णय में-उत्तर प्रदेश राज्य बनाम बटुक देव पाटिल त्रिपाठी और अन्य (उपर्युक्त) इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि संविधान के अनुच्छेद 235 के तहत उच्च न्यायालय की शक्ति किसी अधीनस्थ न्यायिक अधिकारी को समय से पहले सेवानिवृत्त करने के लिए सरकार से सिफारिश करने की है। जो उच्च न्यायालय की प्रशासनिक समिति द्वारा उपयोग मे ली जा सकती है।मौजूदा मामले में यह देखा गया है कि उच्च न्यायालय की प्रशासनिक समिति प्रकाश मे तब आयी है जब राज्य सरकार ने सेवानिवृत्ति आदेश पारित कर दिया था। यह सही है कि प्रशासनिक न्यायाधीश द्वारा राज्य सरकार के प्रस्ताव पर स्वीकृति दी गयी कि अपीलार्थी को 8 जुलाई 1968 को समय पूर्व सेवानिवृत्त कर दिया जाये तथा प्रशासनिक न्यायाधीश की राय पर राज्यपाल द्वारा 24 अगस्त 1968 को आदेश पारित किया गया। 27 अगस्त 1968 को ही राज्यपाल का आदेश उच्च न्यायालय की प्रशासनिक समिति के समक्ष रखा गया जिसके द्वारा प्रशासनिक न्यायाधीश की राय जो कि पहले ही राज्य सरकार को प्रेषित की जा चुकी थी पर अपनी सहमति दीं। प्रशासनिक समिति की राय के बाद मामला राज्यपाल को

दुबारा कतई नहीं भेजा गया। प्रशासनिक समिति द्वारा प्रशासनिक न्यायाधीश की राय पर मंजूरी देने के बाद सेवानिवृत्ति आदेश अपीलार्थी को 3 सितम्बर 1968 को तामील हुआ, इस प्रकार जाहिर है कि राज्यपाल ने मौजूदा मामलें में पूर्ण पीठ अथवा प्रशासनिक समिति की राय पर कार्यवाही नहीं करते हुए केवल प्रशासनिक न्यायाधीश की राय पर कार्यवाही की हैै।

अंततः अपीलार्थी की रिट याचिका पर सुनवाई करने वाले दो विद्वान न्यायाधीशों ने अपने द्वारा दिए गए दो अलग-अलग निर्णयों में संविधान के अनुच्छेद 235 के अनुपालन के सवाल पर विचार किया। हम यह कहते हुए खेद व्यक्त करते हैं कि दोनों विद्वान न्यायाधीश अपने सामने उठाए गए प्रश्न के सार से चूक गए। उन्होंने संविधान के अनुच्छेद 233 का उल्लेख किया है। जबकि उपयुर्क्त अनुच्छेद जो उनके समक्ष विचार के लिए था वह संविधान का अनुच्छेद 235 था । दोनो विद्वान न्यायाधीशों ने यह विचार रखा है कि जिला न्यायाधीश अथवा अधीनस्थ न्यायिक अधिकारी के समय पूर्व सेवानिवृत्ति के आदेश के प्रश्न पर राज्यपाल द्वारा उच्च न्यायालय से परामर्श की ही अपेक्षा की जाती है । उन्होंने इस बात की अनदेखी की है कि राज्यपाल केवल उच्च न्यायालय या प्रशासनिक समिति द्वारा की गई सिफारिश पर ही ऐसा आदेश पारित कर सकते हैं। उन दोनों द्वारा की गई दूसरी त्रुटि यह है कि उन्होंने यह अभिनिर्धारित किया है कि राज्यपाल द्वारा अनिवार्य के सेवानिवृत्ति के आदेश पारित करने के बाद भी उच्च न्यायालय से ऐसा परामर्श अनुज्ञेय है। तृतीय उन्होने सिफारिश को जो कि उच्च न्यायालय द्वारा न्यायिक अधिकारी के समय पूर्व सेवानिवृत्ति को, संविधान के अनुच्छेद 320 -3-सी में बतलाये परामर्श के समान माना है जिसमे कि लोकसेवा आयोग अथवा राज्य सेवा आयोग जैसा भी मामला हो, उसमें भारत सरकार अथवा राज्य सरकार अनुशासनात्मक मामलो से प्रभावित व्यक्ति के मामले में विचार-विमर्श करती है और अपना मामला इस न्यायालय के उत्तरप्रदेश राज्य बनाम मनबोधनलाल श्रीवास्तव 1958

एस.सी.और 533 पर निर्भर माना है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया कि ऐसा परामर्श बाध्यकारी नहीं है और ऐसा करने मे असफल होने पर न्यायालय में अपीलार्थी को कोई वादहेतुक उत्पन्न नहीं होता हैं।

हरियाणा राज्य बनाम इंदर प्रकाश आनंद एच. सी. एस. और अन्य [1976] (सपं) एस. सी.और. 603 इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि संविधान का अनुच्छेद 235 जिला न्यायालयों और उनके अधीनस्थ न्यायालयों पर उच्च न्यायालय के नियंत्रण में निहित है। इस "नियंत्रण" में अनुशासनात्मक और प्रशासनिक अधिकार क्षेत्र दोनों शामिल हैं। अनुशासनात्मक नियंत्रण का अर्थ न केवल कदाचार के लिए सजा देने का अधिकार क्षेत्र है, बल्कि यह निर्धारित करने की शक्ति भी है कि सेवा के किसी सदस्य का रिकॉर्ड संतोषजनक है या नहीं, ताकि वह सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने तक पूरी अवधि के लिए सेवा में बने रहने का हकदार हो। न्यायिक सेवा के सदस्यों पर प्रशासनिक, न्यायिक और अनुशासनात्मक नियंत्रण केवल उच्च न्यायालय में निहित है। समयपूर्व सेवानिवृत्ति प्रशासनिक और अनुशासनात्मक अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में की जाती है। यह प्रशासनिक कारण है कि सार्वजनिक हित में उन्हें समय से पहले सेवानिवृत्त करने का निर्णय लिया जाता है और यह अनुशासनात्मक है, क्योंकि यह निर्णय सार्वजनिक हित में लिया जाता है कि वह सेवानिवृत्ति की सामान्य आयु तक बने रहने के योग्य नहीं है। सेवानिवृत्ति की आयु निर्धारित करना राज्य सरकार का अधिकार है। सेवा की शर्तों को नियंत्रित करने वाले नियमों के तहत उस अवधि में कटौती अनुशासनात्मक और प्रशासनिक दोनो से ही संबंधित मामला है।

उच्च न्यायालय में निहित नियन्त्रण पूर्ण है, जो कि केवल नियुक्ति, बर्खास्तगी, पद से हटाने या पद में कमी और जिला न्यायाधीश के पद पर प्रारंभिक नियुक्ति और प्रारंभिक पदोन्नति के मामले में राज्यपाल की शक्ति के अधीन है । अधीनस्थ न्यायपालिका पर पूर्ण नियंत्रण उच्च न्यायालय को सौंपने से यह बात सामने आती है

कि यदि उच्च न्यायालय की राय है कि कोई विशेष अधिकारी सेवा में बने रहने के योग्य नहीं है, तो उच्च न्यायालय उस राय को राज्यपाल को सूचित करेगा, क्योंकि राज्यपाल को पद से बर्खास्त करने, हटाने या कम करने या नियुक्ति को समाप्त करने का अधिकार है। ऐसे मामलों में, राज्यपाल, राज्य के प्रमुख के रूप में, उच्च न्यायालय की सिफारिशों के अनुरूप कार्य करेगा अन्यथा परिणाम दुर्भाग्यपूर्ण होंगे। लेकिन, अनिवार्य सेवानिवृत्ति अनुच्छेद 311 या सेवा नियमों के तहत बर्खास्तगी या हटाने या रैंक में कमी के बराबर नहीं है। जब कोई मामला हटाने या बर्खास्तगी या पद में कमी का नहीं होता है, तो न्यायिक अधिकारियों पर अभ्यास या नियंत्रण के संबंध में कोई भी आदेश उच्च न्यायालय द्वारा होता है और अन्यथा किसी अन्य प्राधिकरण द्वारा नहीं, यह न्यायपालिका की स्वतंत्रता को प्रभावित करेगा। यह उस उच्च उद्देश्य को प्रभावी बनाने के लिए है कि संविधान के अनुच्छेद 235 में, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा विभिन्न निर्णयों में समझाया गया है, यह आवश्यक है कि अधीनस्थ न्यायपालिका से संबंधित सभी मामले जिनमें समयपूर्व सेवानिवृत्ति और अनुशासनात्मक कार्यवाही शामिल हैं, लेकिन संविधान के अनुच्छेद 311 के दायरे में आने वाली सजा के अधिरोपण को छोड़कर और पदोन्नति पर पहली नियुक्ति पर उच्च न्यायालयों द्वारा अभ्यास किया जाना चाहिए और निर्णय लिया जाना चाहिए, नियंत्रण उनके पास निहित है।

आंध्र प्रदेश के उच्च न्यायालय और अन्य मे वी.वी.वी.एस. कृष्णा शुद्धता और अन्य।,[1979] 1 एस.सी.और. 26 मे इस न्यायालय ने फिर से कहा है कि संविधान का अनुच्छेद 235 वह धुरी है जिसके इर्द-गिर्द संविधान के भाग VI के अध्याय VI की पूरी योजना घूमती है। इसके तहत राज्य की न्यायिक सेवा से संबंधित व्यक्तियों की नियुक्ति और पदोन्नति और छुट्टी देने सहित जिला अदालतों और उनके अधीनस्थ अदालतों का नियंत्रण उच्च न्यायालय में निहित है। कई निर्णयों पर विचार करने के बाद, उस

मामले में न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 235 के तहत अधीनस्थ न्यायपालिका पर उच्च न्यायालय के नियंत्रण के दायरे के संबंध में उक्त निर्णयों द्वारा स्पष्ट वास्तविक कानूनी स्थिति निर्धारित की है। न्यायालय ने आगे कहा कि संविधान के अनुच्छेद 235 के तहत उक्त शक्ति प्रकृति में अनन्य, विस्तार में व्यापक और संचालन में प्रभावी थी। इसके दायरे में आने वाले कई मामलों में, इस न्यायालय का विचार था कि जिला न्यायालयों और अधीनस्थ न्यायालयों के न्यायाधीशों की समयपूर्व सेवानिवृत्ति एक थी।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इस मामले का निर्णय करते समय भारतीय संविधान के अनुच्छेद 235 का हस्तगत मामले में लागू होने और उसके दायरे के बारे में उच्च न्यायालय ने त्रुटि कारित की है। इसनें यह मान लिया कि उच्च न्यायालय से परामर्श के बाद राज्यपाल समयपूर्व सेवानिवृत्ति का आदेश जिला न्यायाधीश अथवा अधीनस्थ न्यायिक अधिकारी के संबंध मे पारित कर सकता है तथा यदि राज्यपाल द्वारा परामर्श नहीं भी किया गया है तो समय पूर्व सेवानिवृत् का आदेश दूषित नहीं होगा और ऐसी स्थिति मे यह एक अनियमित्ता होगी जो न्यायालय नियम 1952 के नियम 21 के तहत सुधारी जा सकती है।

उच्च न्यायालय के दोनो विद्वान न्यायाधीशगण के निर्णय का सुसंगत पैराग्राफ जिन्होने निर्णय पारित किया है नीचे दिया गया है--

न्यायाधीश डी.एस.माथुर के अनुसार-

समयपूर्व सेवानिवृत्ति के मामले में मामले में, परामर्श, यदि पश्चातवर्ती भी हो, किन्तु अधिकारी के वास्तविक सेवानिवृत्त होने से पहले हो, अर्थात, चार्ज हेण्डआेवर, प्रत्येक मामले मे यह नहीं कहा जा सकता कि भ्रामक है और उपयुक्त नहीं है। केवल तभी जब यह प्रकट होता हो अनिर्वाय सेवानिवृत्ति के आदेश को पारित करने के पश्चात, उच्च न्यायालय ने मामले को मेरिट पर नही परखा बल्कि स्वीकार किया यह कहा जा

सकता है कि वहां अनुच्छेद 233-1 मे बतलाये अनुसार परामर्श नहीं किया गया। लेकिन जहां उच्च न्यायालय ने मेरिट पर मामले को परखा है और राज्यपाल के न्यायिक अधिकारी के अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश से सहमति दी है वहां कोई त्रुटि नहीं है, इस तथ्य को समझते हुए कि सेवानिवृत्ति का आदेश तामील की दिनांक से अथवा जिस दिनांक से सेवानिवृत्त सरकारी कर्मचारी को होना है, से प्रभावी होगा। मौजूदा मामले मे तीन महीने का नोटिस दिया गया था अर्थात अधिकारी तीन महीने के समाप्त होने पर आदेश की तामील की दिनांक से सेवानिवृत्त होना था इस समयावधि मे मामला उच्च न्यायालय द्वारा स्वय के स्तर पर अथवा अधिकारी के रिप्रजेटेंशन पर परखा जा सकता था। इसलिए हम इस मत के है कि उच्च न्यायालय का परामर्श अवैध घोषित नही किया जा सकता मात्र इस बात को देखते हुए कि कोई उचित और पूर्ण परामर्श समयपूर्व सेवानिवृत्ति के आदेश को पारित करने से पहले नहीं किया गया था, मामले के तथ्य एवं परिस्थितियां इस बात की साक्षी है कि उच्च न्यायालय राज्यपाल के आदेश से अनुचित रूप से प्रभावित नहीं था एवं उच्च न्यायालय ने स्वयं और स्वतन्त्र रूप से मामले को गुणावगुण पर परखा था।

अब न्यायालय के नियमों के अध्याय 3 के नियम 21 को संदर्भित किया जा सकता है, जो स्पष्ट रूप से उपबंधित करता है कि कोई अनियमितता अथवा इस अध्याय मे उपबंधित प्रक्रिया की पालना मे चूक किसी पारित आदेश अथवा नियमों के तहत किए गए कार्य को अवैध नहीं बनायेगी। यह नियम उस मामलें को शामिल नहीं कर सकता जहां कोई आदेश अध्याय 3 मे उपबंधित नियमों की सम्पूर्ण अवहेलना में पारित किया गया हो किन्तु एक अनियमितता जो सदभाविक रूप से हुई हो वह आदेश को अवैध नहीं बनाती है परिसीमा अधिनियम की धारा 5 मे उपबंधित सिद्धान्तों को मौजूदा प्रकृति के मामलें पर लागू किया जा सकता है। जहां दो प्रकार के मत संभव हो,

अनियमितता यदि कोई हो दुराशय से की गयी नहीं मानी जा सकती और ऐसी अनियमितता नियम 21 के तहत शामिल है ।

न्यायाधीश सतीशचन्द्र के अनुसारः

अध्याय 3 के नियम 5 के अंतर्गत प्रशासनिक न्यायाधीश को प्रशासनिक समिति से परामर्श करना था। परामर्श पश्चातवर्ती भी किया गया हो, यदि समिति प्रशासनिक न्यायाधीश के कार्य को स्वीकार कर ले, तब मूल कार्य वैध है और उसकी तिथि से प्रभावी है। इस विचार से 8 जुलाई 1968 को न्यायालय के मत का प्रतिप्रेषण वैध होगा

यदि यह मान भी लिया जावे कि 8 जुलाई 1968 का प्रतिप्रेषण कानून की आवश्यकता को सन्तुष्ट नहीं करता था, तब भी याचिकाकर्ता का कोई मामला हस्तक्षेप करने के लिए नहीं बनता हैं । यह देखा जा चुका है कि प्रशासनिक समिति ने 28 अगस्त 1968 को अपना निर्णय लिया । तब तक राज्यपाल ने न्यायालय के मत पर विचार कर लिया था जो कि 8 जुलाई 1968 को भेजा गया था । राज्यपाल ने अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश उच्च न्यायालय को प्रेषित कर दिया था। उच्च न्यायालय ने 2 सितम्बर 1968 को या उसके लगभग आदेश को तामील के लिए याचिकाकर्ता को प्रेषित कर दिया था, समिति द्वारा प्रस्ताव पर सहमति के बहुत बाद मे 3 सितम्बर 1968 को याचिकाकर्ता पर आदेश तामील हो गया था । इस प्रकार 3 सितम्बर 1968 को जब अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश प्रभाव मे आया उससे पूर्व संविधान के अनुच्छेद 233 की सभी अर्हताएं पूर्ण हो चुकी थी । इस स्थिति मे, नियम 21 प्रभाव मे आता है एवं न्यायालय नियमों के अध्याय 3 की प्रक्रिया मे जो अनियमितताएं हुई उनको सुधार देता हैं। आक्षेपित आदेश संविधान के अनुच्छेद 233 का उल्लंघन नहीं माना जा सकता।

हम उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों की उपरोक्त राय को स्वीकार नहीं करते हैं।

अब, *उत्तर प्रदेश राज्य बनाम बटुक देव पाटिल त्रिपाढी एवं अन्य*, में इस न्यायालय के निर्णय से इलाहाबाद उच्च न्यायालय की कार्यवाही नियमों के वास्तविक अर्थ के संबंध में यह स्थापित हो चुका है कि प्रशासनिक समिति के पास यह अधिकार था कि वह राज्यपाल को जिला न्यायाधीश अथवा अधीनस्थ न्यायिक अधिकारी के अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश को पारित करने की सिफारिश करने का अधिकारिता थी इस कारण हमे आवश्यकता नहीं है, इस प्रश्न मे जाने की कि केवल पूर्ण पीठ को ही अपीलार्थी का ऐसी सिफारिश किये जाने से पहले मामला परखा जाना था । मौजूदा मामलें मे जैसा कि हमने पहले ही बताया है, प्रशासनिक समिति को राज्यपाल के समयपूर्व सेवानिवृत्ति के आदेश जो की प्रशासनिक न्यायाधीश के मत पर अाधारित था, उक्त आदेश के पारित होने के पश्चात हुई। न्यायालय नियम 1952 के अध्याय 3 के कार्य- नियम, जो कि उपर रेफर किये गये है, पूर्ण पीठ, मुख्य न्यायाधीश, प्रशासनिक न्यायाधीश एवं उच्च न्यायालय की प्रशासनिक समिति की शक्तियों को बतलाते है। नियमों के अध्याय 3 के नियम 3 यह उपबंधित करता है कि समस्त कार्यपालक एवं प्रशासनिक कार्य तथा सभी प्रशासनिक विभाग के कार्य जो आदेश की वांछना करते है वे रजिस्ट्रार द्वारा मुख्य न्यायाधीश को अथवा प्रशासनिक विभाग के न्यायाधीश को प्रस्तुत किये जायेगे, जैसा भी मामला हो, अपनी टिप्पणी के साथ, यदि कोई हो और नियमों के अंतर्गत उस न्यायाधीश द्वारा निस्तारित किये जायेगें। नियम 4 उपबंधित करता है कि प्रशासनिक विभाग के न्यायाधीश अंतिम आदेश करने से पहले, न्यायिक अधिकारियो की नियुक्ति, प्रमोशन अथवा निलम्बन से संबधित सिफारिशों के संबध में इलाहाबाद मे उपस्थित प्रशासनिक समिति के न्यायाधीशो में सूचना प्रसारित करायेंगे, एवं यदि कोई न्यायाधीश असहमति रखते है तो लिखित मे असहमति और उसके कारण

व्यक्त करेगें । नियम 5 मे प्रावधान है कि इसके तहत निर्धारित मामलों के संबंध में प्रशासनिक विभाग के न्यायाधीश प्रशासनिक समिति से परामर्श करेगे जो कि मामले से संबंधित दस्तावेजों को इलाहाबाद मे उपस्थित न्यायाधीशों को प्रसारित करके या इसे प्रशासनिक समिति की बैठक मे रखकर करेगें एवं नियमों के नियम 5-1के खण्ड सी मे एक मामला यह उल्लेखित है वे सभी महत्वपूर्ण मामलों जिन पर सरकार राय चाहती है। मौजूदा मामले मे सरकार ने इस सवाल के संबंध में उच्च न्यायालय की राय मांगी थी कि क्या अपीलार्थी को समय से पहले सेवानिवृत्त किया जा सकता है और यह सवाल निश्चित रूप से अधीनस्थ न्यायिक सेवा के दृष्टिकोण से एक बहुत ही महत्वपूर्ण मामला था। प्रशासनिक न्यायाधीश को सरकार द्वारा व्यक्त किए गए विचार के समर्थन में अपनी राय देने से पहले या तो सरकार से प्राप्त पत्र को प्रशासन की गयी समिति के सदस्यों के बीच वितरित करना चाहिए था या इसे उनके सामने एक बैठक में रखना चाहिए था। उन्होंने दोनों में से किसी भी तरीके को नहीं अपनाया। लेकिन उन्होंने अपने स्तर पर ही अपनी राय सरकार को यह कहते हुए भेज दी कि अपीलार्थी समय से पहले सेवानिवृत्त किया जा सकता था जो वह नहीं कर सकते थे। सामान्यत, प्रदर्शन के मूल्यांकन और मामले के अन्य सभी पहलुओं के आधार पर यह उच्च न्यायालय का काम है कि वह इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि क्या उसके नियंत्रण में किसी विशेष न्यायिक अधिकारी को समय से पहले सेवानिवृत्त किया जाना है और एक बार जब उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंच जाता है कि ऐसी सेवानिवृत्ति होनी चाहिए, तो न्यायालय राज्यपाल से ऐसा करने की सिफारिश करता है। निष्कर्ष उच्च न्यायालय का होना चाहिए क्योंकि नियंत्रण उसमें निहित है। इलाहाबाद उच्च न्यायालय में प्राप्त नियमों के तहत, प्रशासनिक समिति न्यायालय के लिए और उसकी ओर से कार्य कर सकती थी लेकिन प्रशासनिक न्यायाधीश ऐसा नहीं कर सकते थे। इसलिए, सरकारी प्रस्ताव के साथ उनकी सहमति का कोई परिणाम/अर्थ नहीं था और यह संविधान के

अनुच्छेद 235 की आवश्यकता को पूरा करने के योग्य नहीं था। राज्यपाल द्वारा ऐसी सिफारिश के आधार पर आदेश पारित करने के बाद ही, अपीलार्थी को वास्तव में सेवानिवृत्ति का आदेश दिए जाने से पहले मामले को प्रशासनिक समिति के समक्ष रखा गया था। प्रशासनिक समिति ने राज्यपाल के आदेश या प्रशासनिक न्यायाधीश द्वारा पहले व्यक्त की गई राय से असहमति नहीं जताई होगी लेकिन यह ज्ञात नहीं है कि यदि मामला राज्यपाल के द्वारा समयपूर्व सेवानिवृत्ति का आदेश पारित करने से पूर्व प्रशासनिक समिति के पास आता तो वह क्या करती। किसी भी स्थिति में इस मामले में विचलन केवल एक अनियमितता नहीं है जिसे समयपूर्व सेवानिवृत्ति का आदेश पारित होने के बाद राज्यपाल की कार्रवाई के लिए प्रशासनिक समिति द्वारा दी गई पूर्व कार्योत्तर मंजूरी से ठीक किया जा सकता है। इस मामले में की गई त्रुटि अवैधता के बराबर लाइलाज दोष लाइलाज दोष के समान है। हम यह जोड़ सकते है कि सरकार के लिए यह अधिकारिता है कि वह जिला न्यायाधीश या अधीनस्थ न्यायिक अधिकारी के आचरण पर असर डालने वाली सभी सामग्रियों को उच्च न्यायालय के संज्ञान में लाए, जो उसके कब्जे में हो सकती हैं, सरकार किसी जिला न्यायाधीश या अधीनस्थ न्यायिक अधिकारी को समय से पहले सेवानिवृत्त करने की पहल नहीं कर सकती है। ऐसी पहल का अधिकार उच्च न्यायालय को होना चाहिए।

इन परिस्थितियों में, यह माना जाना चाहिए कि विवादित समयपूर्व सेवानिवृत्ति आदेश जो कि राज्यपाल द्वारा उसके समक्ष प्रशासनिक समित अथवा पूर्ण पीठ की सिफारिश के न होते हुए पारित किया गया, शून्य व अप्रभावी है। परिणामस्वरूप हम उच्च न्यायालय के निर्णय को अपास्त करते है एवं अपीलार्थी से संबंधित समयपूर्व सेवानिवृत्ति आदेश को निरस्त करते है। उसे इस प्रकार माना जाएगा कि वह 31-3-1971 की समाप्ति तक सेवा मे रहा था जब तक कि उसने सेवानिवृत्ति की आयु 58 वर्ष प्राप्त नहीं कर ली थी।

हमें सूचित किया गया है कि अपीलार्थी की मृत्यु 27.11.1983 को हो गई है और उसके विधिक प्रतिनिधियों को रिकॉर्ड पर लिया जा चुका है। अतः उपरोक्त आधार पर अपीलार्थी को देय वेतन, पेंशन आदि के बकाया का भुगतान आज से चार महीने के भीतर अपीलार्थी के विधिक प्रतिनिधियों को किया जाएगा । तदनुसार यह अपील स्वीकार की जाती है। अपीलार्थी के विधिक प्रतिनिधि भी दोनों न्यायालयों में लागत के हकदार हैं।

अपील स्वीकार।

यह अनुवाद और्टिफिशल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी श्री विकास सिंह चौधरी (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।